

यैर्लोके धनधान्यादि-पुत्रपौत्रादिसम्पदाः । प्राप्यन्ते भो महाभव्या तासां धर्मो हि कारणम् ॥४३॥
 पूजा श्रीमज्जिनेन्द्राणां पात्रदानं व्रतक्रिया । प्रौषधादिविधिः प्रोक्तः सद्धर्मोयं सतां श्रिये ॥४४॥
 स व्याघ्रस्तु महापापी मुनिभक्षणमानसः । मृत्वा तेनैव पापेन संप्राप्तो नरकं कुधीः ॥४५॥
 ज्ञात्वेति च महाभव्यैः पुण्यपापफलाफलम् । श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां धर्मो कार्या मतिः सदा ॥४६॥
 इति सदभयदाने पात्रभेदेन मान्ये परमसुखनिदाने ध्वस्तपापारिमाने ।
 जिनपतिकथितेस्मिन्सारसूत्रे पवित्रे भवति जगति सिद्धा सत्कथेयं श्रिये च ॥४७॥
 इति कथाकोशेऽभयदानफलप्राप्तशूकरस्याख्यानं समाप्तम् ।

११३. करकण्डुनृपस्याख्यानम्

श्रीमज्जिनं जगत्पूज्यं प्रणम्य प्रगदाम्यहम् । करकण्डुनरेन्द्रस्य सच्चरित्रं सुखावहम् ॥१॥
 यः पुरा श्रीजिनाधीशं व्रतेनैकेन मुग्धधीः । गोपालोपि समभ्यर्च्य प्राप्तवान्सुखमुत्तमम् ॥२॥
 तच्चरित्रं पुराणज्ञैर्यथोक्तं पूर्वसूरिभिः । तेषां पादप्रसादेन संक्षेपेण तथोच्यते ॥३॥
 अत्रैव भरतक्षेत्रे देशे कुन्तलसंज्ञके । पुरे तेरपुरे नीलमहानीलौ नरेश्वरौ ॥४॥
 श्रेष्ठी श्रीवसुमित्राख्यो जिनपादाब्जषट्पदः । श्रेष्ठिनी वसुमत्याख्या तस्याभूद्धर्मवत्सला ॥५॥

धर्म है। इसलिए सुख की चाह करने वाले भव्यजनों को जिन-पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, संयम आदि धर्म का निरन्तर पवित्र भावों से सेवन करना चाहिए। देविल तो पुण्य के प्रभाव से स्वर्ग गया और धर्मिल ने मुनियों को खा जाना चाहा था इसलिए वह पाप के फल से मरकर नरक गया। इस प्रकार पुण्य और पाप का फल जानकर भव्यजनों को उचित है कि वे पुण्य के कारण पवित्र जैनधर्म में अपनी बुद्धि दृढ़ करें ॥३०-४६॥

इस प्रकार परम सुख-मोक्ष के कारण, पापों का नाश करने वाले और पात्र-भेद से विशेष आदर योग्य इस पवित्र अभयदान की कथा अन्य जैन शास्त्रों के अनुसार संक्षेप में यहाँ लिखी गई। यह सत्य कथा संसार में प्रसिद्ध होकर सबका हित करे ॥४७॥

११३. करकण्डु राजा की कथा

संसार द्वारा पूजे जाने वाले जिन भगवान् को नमस्कार कर करकण्डु राजा का सुखमय पवित्र चरित लिखा जाता है ॥१॥

जिसने पहले केवल एक कमल से जिन भगवान् की पूजा कर जो महान् फल प्राप्त किया, उसका चरित जैसा ग्रन्थों में पुराने ऋषियों ने लिखा है उसे देखकर या उनकी कृपा से उसका थोड़ा सार मैं लिखता हूँ ॥२-३॥

नील और महानील तेरपुर के राजा थे। तेरपुर कुन्तल देश की राजधानी थी। यहाँ वसुमित्र नाम का एक जिनभक्त सेठ रहता था। सेठानी वसुमती उसकी स्त्री थी। धर्म से उसे बड़ा प्रेम था। इन सेठ-सेठानी के यहाँ धनदत्त नाम का एक ग्वाला नौकर था। वह एक दिन गाय चराने को जंगल में गया

तद्गोपो धनदत्तश्च कदाचिदटवीं गतः। सहस्रदलसंयुक्तं कमलं सरसि स्थितम् ॥६॥
 दृष्ट्वा जग्राह तत्रस्था नागकन्या तदावदत्। रे रे गोपाल मे पद्म यद्गृहीतं त्वयाधुना ॥७॥
 सर्वोत्कृष्टाय दातव्यं यदीदं वाञ्छसि प्रियम्। ततोसौ नागकन्यायाः प्रतिपद्य वचो ध्रुवम् ॥८॥
 तत्सुपद्य समादाय गत्वा स्वश्रेष्ठिनं प्रति। जगौ तद्वृत्तकं सोपि श्रेष्ठी श्रीवसुमित्रवाक् ॥९॥
 प्रणम्य भूपतिं प्राह पद्मवृत्तान्तमद्भुतम्। ततः स भूपतिश्चापि श्रेष्ठी गोपादिभिर्युतः ॥१०॥
 सहस्रकूटनामानं गत्वा श्रीमज्जिनालयम्। नत्वा जिनं सुगुप्ताख्यं मुनीन्द्रं च प्रपृष्टवान् ॥११॥
 ब्रूहि भो करुणासिन्धो मुने सद्धर्मतत्त्ववित्। सर्वोत्कृष्टो भवेत्कस्तु तच्छ्रुत्वा मुनिमब्रवीत् ॥१२॥
 भो नरेन्द्र जगत्स्वामी जिनो रागादिवर्जितः। उत्कृष्टोत्कृष्टमाहात्म्यो वर्तते भुवनार्चितः ॥१३॥
 तन्निशम्य मुनेर्वाक्यं सर्वे भूपादयो मुदा। जय त्वं जिननार्थेति प्रोक्त्वा चकुर्मस्क्रियाम् ॥१४॥
 तदा गोपालकः सोपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः। भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्म गृहाणेदमिति स्फुटम् ॥१५॥
 उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जोपरिक्षिप्त्वा सुपंकजम्। गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्म शर्मदम् ॥१६॥
 अत्रान्तरे कथामन्यां प्रवक्ष्ये शृणुतादरात्। श्रावस्तीपत्तने श्रेष्ठी सुधीः सागरदत्तवाक् ॥१७॥

हुआ था। एक तालाब में उसने कोई हजार पंखुड़ियों वाला एक बहुत सुन्दर कमल देखा। उस पर यह मुग्ध हो गया। तब तालाब में कूद कर उसने उस कमल को तोड़ लिया। उस समय नागकुमारी ने उससे कहा—धनदत्त, तूने मेरा कमल तोड़ा तो हैं, पर इतना तू ध्यान में रखना कि यह उस महापुरुष को भेंट किया जाए, जो संसार में सबसे श्रेष्ठ हो। नागकुमारी का कहा मानकर धनदत्त कमल लिए अपने सेठ के पास गया और उनसे सब हाल इसने कहा। वसुमित्र ने तब राजा के पास जाकर उनसे यह सब हाल कहा। सबसे श्रेष्ठ कौन है और यह कमल किसको भेंट चढ़ाया जाए, यह किसी को समझ में न आया। तब सब विचार कर चले कि यह हाल मुनिराज से कहें। संसार में सबसे श्रेष्ठ कौन है, इस बात का पता वे अपने को देंगे। यह निश्चय कर राजा, सेठ, ग्वाला तथा और बहुत से लोग सहस्रकूट नाम के जिन मन्दिरों में गए। वहाँ सुगुप्ति मुनिराज उठरे हुए थे। उनसे राजा ने पूछा—हे करुणा के समुद्र, हे पवित्र धर्म के रहस्य को समझने वाले! कृपया बतलाइए कि संसार में सबसे श्रेष्ठ कौन है? जिन्हें यह पवित्र कमल भेंट किया जाये। उत्तर में मुनिराज ने कहा—राजन्! सारे संसार के स्वामी, राग-द्वेषादि दोषों से रहित जिन भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं क्योंकि संसार उन्हीं की पूजा करता है। यह सुनकर सबको बड़ा सन्तोष हुआ जिसे वे चाहते थे वह अनायास मिल गया। उसी समय वे सब भगवान् के सामने आए। धनदत्त ग्वाले ने तब भगवान् को नमस्कार कर कहा—हे संसार में सबसे श्रेष्ठ गिने जाने वाले, आपको यह कमल मैं भेंट करता हूँ। इसे आप स्वीकार कर मेरी आशा को पूरी करें। यह कहकर वह ग्वाला उस कमल को भगवान् के चरणों में चढ़ाकर चला गया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पवित्र कर्म मूर्ख लोगों को भी सुख देने वाला होता है। इस कथा से सम्बन्ध रखने वाली एक दूसरी कथा यहाँ लिखी जाती है उसे सुनिए—॥४-१७॥

नागदत्ता कुधीस्तस्य भार्या पापात्प्रलम्पटा। सोमशर्मद्विजे कष्टं संजातासक्तमानसा ॥१८॥
 भवन्ति योषितः काश्चित्पापिन्यः कुलमन्दिरे। कृष्णधूमशिखाकोटिसन्निभा दुष्टचेतसः ॥१९॥
 तदा सागरदत्तोसौ श्रेष्ठी श्रीजिनधर्मवित्। ज्ञात्वा तच्चेष्टितं कष्टं सुधीर्वैराग्यमाश्रितः ॥२०॥
 दीक्षामादाय जैनैर्न्त्रीं भवभ्रमणनाशिनीम्। तपः कृत्वा दिवं गत्वा तस्मादागत्य शुद्धधीः ॥२१॥
 अंगदेशेऽत्र चम्पायां वसुपालमहीपतेः। वसुमत्यां सुतो राज्ञीं संजातो दन्तिवाहनः ॥२२॥
 एवं यावत्सुखं राजा वसुपालः स तिष्ठति। तावत्स सोमशर्माख्यो द्विजो भ्रान्त्वा भवावलिम् ॥२३॥
 देशे कलिंगसंज्ञे च नर्मदातिलकाह्वयः। हस्ती जातः स्वपापेन प्राणी दुर्गतिभाग्यभवेत् ॥२४॥
 केनचिच्च द्विपः सोपि वसुपालस्य भूपतेः। प्रेषितः कर्मयोगेन संस्थितस्तस्य मन्दिरे ॥२५॥
 नागदत्ता च सा मृत्वा ताम्रलिप्तपुरे क्रमात्। नागदत्ता पुनर्जाता वसुदत्तवणिक्प्रिया ॥२६॥
 सा तदा द्वे सुते लेभे धनवत्यभिधां तथा। धनश्रियं च सद्रूपमण्डितां गुणशालिनीम् ॥२७॥

श्रावस्ती के रहने वाले सागरदत्त सेठ की स्त्री नागदत्त बड़ी पापिनी थी। उसका चाल-चलन अच्छा न था। एक सोमशर्मा ब्राह्मण के साथ उसका अनुचित बरताव था। सच है, कोई-कोई स्त्रियाँ तो बड़ी दुष्ट और कुल-कुलंकिनी हुआ करती हैं। उन्हें अपने कुल की मान-मर्यादा की कुछ लाज-शरम नहीं रहती। अपने उज्ज्वल कुलरूपी मन्दिर को मलिन करने के लिए वे काले धुएँ के समान होती हैं। बेचारा सेठ सरल स्वभावी था और धर्मात्मा था। इसलिए अपनी स्त्री का ऐसा दुराचार देखकर उसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने फिर संसार के भ्रमण को मिटाने वाली जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वह बहुत ही कंटाल गया था। सागरदत्त तपस्या कर स्वर्ग गया। स्वर्गायु पूरी कर वह अंगदेश की राजधानी चम्पा नगरी में वसुपाल राजा की रानी वसुमती के दन्तिवाहन नाम का राजकुमार हुआ। वसुपाल सुख से राज करते रहे ॥१८-२३॥

इधर वह सोमशर्मा मर कर पाप के फल से बहुत समय तक दुर्गतियों में घूमा। एक से एक दुःसह कष्ट उसे सहना पड़ा। अन्त में वह कलिंग देश के जंगल में नर्मदा तिलक राजा का हाथी हुआ और ठीक ही है पाप से जीवों को दुर्गतियों के दुःख भोगने ही पड़ते हैं। कर्म से इस हाथी को किसी ने पकड़ लाकर वसुपाल को भेंट किया ॥२४-२५॥

उधर इस हाथी के पूर्वभव के जीव सोमशर्मा की स्त्री नागदत्ता ने भी पाप के उदय से दुर्गतियों में अनेक कष्ट सहे। अन्त में वह ताम्रलिप्तनगर में भी वसुदत्त सेठ की स्त्री नागदत्ता हुई उस समय इसके धनवती और धनश्री नाम की दो लड़कियाँ हुई ये दोनों बहिनें बड़ी सुन्दर थीं। स्वर्ग कुमारियाँ इनका रूप देखकर मन ही मन बड़ी कुढ़ा करती थीं। इनमें धनवती का ब्याह नागानन्द पुर के रहने वाले वनपाल नाम के सेठ पुत्र के साथ हुआ और छोटी बहिन धनश्री कौशाम्बी के वसुमित्र की स्त्री हुई। वसुमित्र जैनी था। इसलिए उसके सम्बन्ध से धनश्री को कई बार जैनधर्म के उपदेश सुनने का मौका मिला। वह उपदेश उसे बहुत रुचि कर हुआ और फिर वह भी श्राविका हो गई। लड़की के प्रेम

नागानन्दपुरे कश्चिद्वनपालो वणिक्सुतः। तां धनादिवतीं कन्यां विधिना परिणीतवान् ॥२८॥
 वत्सदेशे सुविख्याते कौशाम्बीपत्तने शुभे। श्रेष्ठिनो वसुमित्रस्य धनश्रीः साभवत्प्रिया ॥२९॥
 तत्संसर्गेण सा तत्र धनश्रीः पुण्ययोगतः। श्रुत्वा धर्मं जिनेन्द्राणां संजाता श्राविकोत्तमा ॥३०॥
 कदाचित्रागदत्ता च पुत्रीस्नेहेन सन्मुदा। धनश्रियो गृहं प्राप्ता तथा पुत्र्या च सद्भिया ॥३१॥
 प्राधूर्णक्रियां कृत्वा सा नीता मुनिसन्निधौ। हितान्यणुव्रतान्युच्चैर्ग्राहिता सा पुनस्ततः ॥३२॥
 बृहत्पुत्री समीपं च गता तत्र तथा तदा। बुद्धभक्ता कृताप्येवं लब्ध्वा वारत्रयं पुनः ॥३३॥
 ग्राहिताणुव्रतान्येवं धनवत्या निराकृता। ततश्चतुर्थवारे च गृहीत्वा तानि भक्तितः ॥३४॥
 धर्मे श्रीमज्जिनेन्द्रोक्ते सारशर्मविधायिनि। दृढा भूत्वा स्वकालान्ते मृत्वा सत्पुण्यमाश्रिता ॥३५॥
 कौशम्ब्यां वसुपालाख्यभूपतेः कुलयोषितः। वसुमत्याः सुता जाता कुदिने शेषपापतः ॥३६॥
 तदा राजादिभिः कन्या मंजूषायां निधाय सा। स्वनाममुद्रिकोपेता यमुनायां प्रवाहिता ॥३७॥
 गंगायाः संगमं प्राप्य कुसुमाख्यमहापुरे। गता पद्महृदे दृष्टा मालाकारेण केनचित् ॥३८॥
 नाम्ना कुसुमदत्तेन समानीय गृहं स्त्रियै। दत्ता कुसुममालायै तथा सा बहुयत्नतः ॥३९॥

से नागदत्ता एक बार धनश्री के यहाँ गई धनश्री ने अपनी माँ का खूब आदर-सत्कार किया और उसे कई दिनों तक अच्छी तरह अपने यहाँ रखा। नागदत्ता धनश्री के यहाँ कई दिनों तक रही, पर वह न तो कभी मन्दिर गई और न कभी उसने धर्म की कुछ चर्चा की। धनश्री अपनी माँ को धर्म से विमुख देखकर एक दिन उसे मुनिराज के पास ले गई और समझा कर उसे मुनिराज द्वारा पाँच अणुव्रत दिलवा दिये। एक बार इसी तरह नागदत्ता को अपनी बड़ी लड़की धनवती के यहाँ जाना पड़ा। धनवती बुद्धधर्म को मानती थी। सो उसने इसे बुद्धधर्म की अनुयायिनी बना लिया। इस तरह नागदत्ता ने कोई तीन बार जैनधर्म को छोड़ा। अन्त में उसने फिर जैनधर्म ग्रहण किया और अब की बार वह उस पर रही भी बहुत दृढ़। जन्म भर फिर उसने जैनधर्म को निर्वाहा। आयु के अन्त में मरकर वह कौशाम्बी के राजा वसुपाल की रानी वसुमती के लड़की हुई, पर भाग्य से जिस दिन वह पैदा हुई, वह दिन बहुत खराब था। इसलिए राजा ने उसे एक सन्दूक में रखकर और उसके नाम की एक अँगूठी उसकी उँगली में पहनाकर उस सन्दूक को यमुना में छोड़वा दिया। सन्दूक बहती हुआ कुसुमपुर के एक पद्महृद नाम के तालाब में पहुँच गई इस तालाब में गंगा-यमुना के प्रवाह का एक छोटा-सा नाला बहकर आता था। उसी नाले में पड़कर वह सन्दूक तालाब में आ गई। तब किसी कुसुमदत्त नाम के माली ने देखा। वह निकाल कर उसे अपने घर लिवा आया। सन्दूक को खोलकर उसने देखा तो उसमें से यह लड़की निकली। कुसुमदत्त के कोई संतान न थी। इसलिए वह इसे पाकर बहुत खुश हुआ। अपनी स्त्री को बुलाकर उसने उसे उसकी गोद में रख दिया और कहा-प्रिये, भाग्य से अपने को यह लड़की अनायास मिल गई इससे अपने को बड़ी खुशी मनानी चाहिए। मुझे विश्वास है कि तुम भी इस अमूल्य निधि से बहुत प्रसन्न होगी। प्रिये, यह मुझे पद्महृद में मिली है। हम इसका नाम भी पद्मावती ही क्यों न रखें? क्यों, नाम तो बड़ा ही सुन्दर है। मालिन जिन्दगी भर से अपनी खाली

पद्माह्वये यतः प्राप्ता ततः पद्मावतीति सा । प्रोक्त्वा संपोषिता तत्र संजाता नवयौवना ॥४०॥
 एकदा केनचिद्वीक्ष्य तस्या रूपं मनोहरम् । गत्वा शीघ्रं मुदा दन्तिवाहनस्य प्रजल्पितम् ॥४१॥
 सोप्यागत्य समालोक्य तद्रूपं चित्तरंजनम् । मालाकारं प्रतिप्राह ब्रूहि रे सत्यमेव च ॥४२॥
 कस्येयं तनुजा चास्ति तच्छ्रुत्वा सोपि भो प्रभो । अस्याः पुत्रीति मंजूषा तदग्रे क्षिप्तवान्हुतम् ॥४३॥
 वीक्ष्य तत्रस्थितां राज-मुद्रिकां सुमनोहराम् । तां सज्जातिं परिज्ञात्वा दन्तिवाहनकोपि सः ॥४४॥

गोद को आज एकाएक भरी पा बहुत आनन्दित हुई। वह आनन्द इतना था कि उसके हृदय में भी न समा सका। यही कारण था कि उसका रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उसने बड़े प्रेम से इसे छाती से लगाया ॥२६-४०॥

पद्मावती उस समय कोई तेरह-चौदह वर्ष की है। उसके सुकोमल, सुगन्धित और सुन्दर यौवनरूपी फूल की कलियाँ कुछ-कुछ खिलने लगी हैं। ब्रह्मा ने उसके शरीर को लावण्य सुधा-धारा से सींचना शुरू कर दिया है। वह अब थोड़े ही दिनों में स्वर्ग के देव कुमारियों से भी अधिक सुन्दरता लाभ कर ब्रह्मा को अपनी सृष्टि का अभिमानी बनायेगी। लोग स्वर्गीय सुन्दरता की बड़ी प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मा को उनकी इस थोथी तारीफ से बड़ी डाह है। इसलिए कि इससे उसकी रचना सुन्दरता में कमी आती है और उस कमी से उन्हें नीचा देखना पड़ता है। ब्रह्मा ने सर्व साधारण के इस भ्रम को मिटाने के लिए कि जो कुछ सुन्दरता है वह स्वर्ग में है, मानो पद्मावती को उत्पन्न किया है। इसके सिवा उन लोगों की झूठी प्रशंसा जो अमरांगनाएँ अभिमान के ऊँचे पर्वत पर चढ़कर सारे संसार को अपनी सुन्दरता की तुलना में ना-कुछ चीज समझ बैठी हैं, उनके इस गर्व को चूर-चूर करना है। इन्हीं सब अभिमान, ईर्ष्या, मत्सर आदि के वश हो ब्रह्मा पद्मावती को त्रिभुवन-सुन्दर बनाने में विशेष यत्नशील है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि पद्मावती कुछ दिनों बाद तो ब्रह्मा की सब तरह आशा पूरी करेगी ही। पर इस समय भी उसका रूप-सौंदर्य इतना मनोमधुर है कि उसे देखते रहने की इच्छा होती है। प्रयत्न करने पर भी आँखें उस ओर से हटना पसन्द नहीं करती है। अस्तु।

पद्मावती की इस अनिंद्य सुन्दरता का समाचार किसी ने चम्पा के राजा दन्तिवाहन को कह दिया। दन्तिवाहन उसकी सुन्दरता की तारीफ सुनकर कुसुमपुर आए। पद्मावती को-एक माली की लड़की को इतनी सुन्दरी, इतनी तेजस्विनी देखकर उसके विषय में उन्हें कुछ सन्देह हुआ। उन्होंने तब उस माली को बुलाकर पूछा-सच कह यह लड़की तेरी ही है क्या? और यदि तेरी नहीं तो इसे कहाँ से और कैसे लाया? माली डर गया। उससे राजा के सवालियों का कुछ उत्तर देते न बना। सिर्फ उसने इतना ही किया जिस सन्दूक में पद्मावती निकली थी, उसे राजा के सामने ला रख दिया और कह दिया था महाराज, मुझे अधिक तो कुछ मालूम नहीं, पर यह लड़की इस सन्दूक में से निकली थी। मेरे कोई लड़का-बाला न होने से इसे मैंने अपने यहाँ रख लिया। राजा ने सन्दूक खोलकर देखा तो उसमें एक अंगूठी निकली। उस पर कुछ इबादत खुदी हुई थी। उसे पढ़कर राजा को पद्मावती के

परिणीय महाभूत्या ततः पद्मावतीं सतीम्। समानीय गृहं शीघ्रं तया सार्द्धं सुखं स्थितः ॥४५॥
 कियत्यपि गते काले वसुपालो नरेश्वरः। दृष्ट्वा स्वमस्तके श्वेतं केशं वा यमपाशकम् ॥४६॥
 त्रिधा वैराग्यमासाद्य स्वराज्यं तनुजाय च। दत्त्वा तस्मै जिनेन्द्राणां महास्नपनपूर्वकम् ॥४७॥
 गृहीत्वा संयमं सारं मुनिर्भूत्वा विचक्षणः। कृत्वा तपो जिनेन्द्रोक्तं स्वर्गं संप्राप्तवान्सुखम् ॥४८॥
 राज्यं प्राप्य ततः सोपि दन्तिवाहनभूपतिः। भुञ्जानो विविधान्भोगान्संस्थितो धर्मतत्परः ॥४९॥
 एकदा सा सती पद्मावती सुप्ता स्वमन्दिरे। स्वप्ने गजादिकं दृष्ट्वा स्वनाथस्य जगौ मुदा ॥५०॥
 तेनोक्तं ते सुतो भावी प्रतापी सिंहदर्शनात्। क्षत्रियाणां भवेन्मुख्यो हे प्रिये गजवीक्षणात् ॥५१॥
 भास्करस्येक्षणाच्चापि प्रजाम्भोजप्रमोददः। इत्याकर्ण्य प्रभोर्वाक्यं सा सन्तुष्टा तरां हृदि ॥५२॥
 ततस्तेरपुरे गोपो धनदत्तः स शुद्धधीः। शेवालकहृदं प्राप्तस्तरितुं निजलीलया ॥५३॥

सम्बन्ध में कोई सन्देह करने की जगह न रह गई। जैसे वे राजपुत्र हैं वैसे ही पद्मावती भी एक राजघराने की राजकन्या है। दन्तिवाहन तब उसके साथ ब्याह कर उसे चम्पा में ले आए और सुख से अपना समय बिताने लगे ॥४१-४५॥

दन्तिवाहन के पिता वसुपाल ने कुछ वर्षों तक और राज्य किया। एक दिन उन्हें अपने सिर पर यमदूत सफेद केश दीख पड़ा। उसे देखकर इन्हें संसार, शरीर, विषय-भोगादि से बड़ा वैराग्य हुआ। वे अपने राज्य का सब भार दन्तिवाहन को सौंप कर जिनमन्दिर गए। वहाँ उन्होंने भगवान् का अभिषेक किया, पूजन किया, दान किया, गरीबों की सहायता की। उस समय उन्हें जो उचित कार्य जान पड़ा उसे उन्होंने खुले हाथों किया बाद वे वहीं एक मुनिराज द्वारा दीक्षा ले योगी हो गए। उन्होंने योगदशा में खूब तपस्या की। अन्त में समाधि से शरीर छोड़कर वे स्वर्ग गए। दन्तिवाहन अब राजा हुए प्रजा का शासन वे भी अपने पिता की भाँति प्रेम के साथ करते थे। धर्म पर उनकी भी पूरी श्रद्धा थी। पद्मावती सी त्रिलोक-सुन्दरी को पा ये अपने को कृतार्थ मानते थे। दोनों दम्पति सदा बड़े हँस-मुख और प्रसन्न रहते थे। सुख की इन्हें चाह न थी, पर सुख ही इनका गुलाम बन रहा था ॥४६-४९॥

एक दिन सती पद्मावती ने स्वप्न में सिंह, हाथी और सूरज को देखा। सबेरे उठकर उसने अपने प्राणनाथ से इस स्वप्न का हाल कहा। दन्तिवाहन ने उसके फल के सम्बन्ध में कहा-प्रिये, स्वप्न तुमने बड़ा ही सुन्दर देखा है। तुम्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। सिंह का देखना जनाता है, कि वह बड़ा ही प्रतापी होगा हाथी के देखने से सूचित होता है कि वह सबसे प्रधान क्षत्रिय वीर होगा और सूरज यह कहता है कि वह प्रजारूपी कमल-वन को प्रफुल्लित करने वाला होगा, उसके शासन से प्रजा बड़ी सन्तुष्ट रहेगी। अपने स्वामी द्वारा स्वप्न फल सुनकर पद्मावती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और सच है, पुत्र प्राप्ति की किसे प्रसन्नता नहीं होती ॥५०-५२॥

पाठकों को तेरपुर के रहने वाले धनदत्त ग्वाले का स्मरण होगा, जिसने कि एक हजार पंखुरियों का कमल भगवान् को चढ़ाकर बड़ा पुण्यबन्ध किया था। उसी की कथा फिर लिखी जाती है। धनदत्त

तत्र शेवालकेनोच्चेर्वेष्टितो मरणं श्रितः। पुण्यात्पद्मावतीगर्भे समागत्य स्थितस्तदा ॥५४॥
 तन्मृत्युं च परिज्ञाय स श्रेष्ठी वसुमित्रवाक्। संस्कार्य मृतकं तच्च स्वयं वैराग्यमाश्रितः ॥५५॥
 नत्वा सुगुप्तनामानं मुनीन्द्रं भक्तिनिर्भरः। तस्माद्दीक्षां समादाय सत्तपोभिर्दिवं गतः ॥५६॥
 अथ चम्पापुरे पद्मावत्यास्तस्याः सुमानसे। जातो दोहलकश्चेति सविद्युन्मेघवर्षणः ॥५७॥
 अंकुशं स्वयमादाय धृत्वा रूपं नरस्य च। समारुह्य द्विपृष्ठे कृत्वा राजानमप्यलम् ॥५८॥
 पत्तनाद्बहिरित्युच्चैर्भ्रमामि स्वेच्छया सुखम्। ज्ञात्वा तन्मानसं चेति दन्तिवाहनभूपतिः ॥५९॥
 स्वमित्रवायुवेगेन खेचरेण महाधिया। कारयित्वा तदा मेघाडम्बरं चपलान्वितम् ॥६०॥
 नर्मदातिलकं शीघ्रमलं कृत्वा महागजम्। चटित्वा च तया सार्द्धं पूर्वोक्तविधिना पुरात् ॥६१॥
 निर्गतस्तु महाभूत्या सेवकाद्यैः समन्वितः। अहो मनोरथः स्त्रीणां महाश्चर्यविधायकः ॥६२॥
 ततः कर्मोदयात्सोपि करीन्द्रो दुष्टमानसः। तदंकुशं समुल्लङ्घ्य संचचाल प्रवेगतः ॥६३॥

को तैरने का बड़ा शौक था। वह रोज-रोज जाकर एक तालाब में तैरा करता था। एक दिन वह तैरने को गया हुआ था। कुछ होनहार ही ऐसा था जो वह तैरता-तैरता एक बार घनी काई में बिंध गया। बहुत यत्न किया पर उससे निकलते न बना। आखिर बेचारा मर ही गया। मरकर वह जिनपूजा के पुण्य से इसी सती पद्मावती के गर्भ में आया ॥५३-५४॥

उधर वसुमित्र सेठ को जब इसके मरने का हाल ज्ञान हुआ तो उसे बड़ा दुःख हुआ। सेठ उसी समय तालाब पर आया और धनदत्त की लाश को निकलवा कर उसका अग्नि-संस्कार किया। संसार की यह क्षणभंगुर दशा देखकर वसुमित्र को बड़ा वैराग्य हुआ। वह सुगुप्ति मुनिराज द्वारा योगव्रत लेकर मुनि हो गया। अन्त में वह तपस्या कर पुण्य के उदय से स्वर्ग गया ॥५५-५६॥

पद्मावती के गर्भ में धनदत्त के आने पर उसे दोहला उत्पन्न हुआ उसकी इच्छा हुई कि मेघ बरसने लगें और बिजलियाँ चमकने लगे। ऐसे समय पुरुष-वेष में हाथ में अंकुश लिए मैं स्वयं हाथी पर सवार होऊँ और मेरे साथ स्वामी भी बैठे। फिर हम दोनों घूमने के लिए शहर के बाहर निकलें। पद्मावती ने अपनी यह इच्छा दन्तिवाहन से जाहिर की। दन्तिवाहन ने उसकी इच्छा के अनुसार अपने मित्र वायुवेग विद्याधर द्वारा मायामयी कृत्रिम मेघ की काली-काली घटाओं द्वारा आकाश आच्छादित करवाया। कृत्रिम बिजलियाँ भी उन मेघों में चमकने लगी। राजा-रानी इस समय उस नर्मदातिलक नाम के हाथी पर, जो सोमशर्मा का जीव था और जिसे किसी ने वसुपाल को भेंट किया था, चढ़कर बड़े ठाट बाट से नौकर-चाकरों को साथ लिए शहर के बाहर हुए। पद्मावती का यह दोहला सचमुच ही बड़ा ही आश्चर्यजनक था। जो हो, जब ये शहर के बाहर होकर थोड़ी ही दूर गए होंगे कि कर्मयोग से हाथी उन्मत्त हो गया। अंकुश वगैरह की वह कुछ परवाह न कर आगे चलने वाले लोगों की भीड़ को चीरता हुआ भाग निकला। रास्ते में एक घने वृक्षों की वनी में होकर वह भागा जा रहा था। सो दन्तिवाहन को उस समय कुछ ऐसी बुद्धि सूझ गई, कि जिससे

महाटवीं गजः प्राप्त-स्तदा स नृपतिः सुधीः। वृक्षशाखां समादाय शिक्षां वा सद्गुरोर्दृढम् ॥६४॥
समुत्तीर्य ततश्चम्पापुरीं प्राप्तः स्वपुण्यतः। भवेत्पुण्यवतां पुंसामुपायः संकटेऽपि च ॥६५॥
ततोसौ नृपतिर्गोहे हा त्वं पद्मावतिप्रिये। किं ते जातमिदं कष्टं कुर्वन्लोकमिति स्फुटम् ॥६६॥
तदा विद्वज्जनैः श्रीमज्जनतत्त्वविदाम्बरैः। सम्बोधितस्तदा दन्तिवाहनः सुखतः स्थितः ॥६७॥
भवेत्सतां शुभं वाक्यं चन्दनादपि शीतलम्। अन्तस्तापं निहन्त्युच्चैर्यत्क्षणात्सर्वदेहिनाम् ॥६८॥
सोपि हस्ती मदोन्मत्तो देशानुल्लङ्घ्य भूरिशः। गत्वा दक्षिणदेशं च सुरः श्रान्तः प्रविष्टवान् ॥६९॥
तां तडागे गजारूढां विलोक्य जलदेवता। समुत्तार्य द्विपाच्छीघ्रं स्थापयामास तत्तटे ॥७०॥
अत्रान्तरे समागत्य रुदन्तीं वीक्ष्य तां जगौ। मालाकारस्तु सम्बोध्य भो भगन्येहि मदगृहम् ॥७१॥
तच्छ्रुत्वा च तया प्रोक्तं कस्त्वं सोपि भटाख्यकः। मालाकारोहमित्युक्त्वा हस्तिनापुरे द्रुतम् ॥७२॥
सतीं स्वगृहमानीय स्वसारं प्रतिपद्य ताम्। स्थापयामास सामान्यो भवेत्कश्चिच्छुभाशयः ॥७३॥

वे एक वृक्ष की डाली को पकड़ कर लटक गए। हाथी आगे भागा ही चला गया। सच है, पुण्य कष्ट समय में जीवों को बचा लेता है। बेचारे दन्तिवाहन उदास मुँह अपनी राजधानी में आए। उन्हें इस बात का अत्यन्त दुःख हुआ कि गर्भिणी प्रिया की न जाने क्या दशा हुई होगी। दन्तिवाहन की यह दशा देखकर समझदार लोगों ने समझा-बुझाकर उन्हें शान्त किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सत्पुरुषों के वचन चन्दन से कहीं बढ़कर शीतल होते हैं और उनके द्वारा दुखियों के हृदय का दुःख सन्ताप बहुत जल्दी ठण्डा पड़ जाता है ॥५७-६८॥

उधर हाथी पद्मावती को लिए भागा चला गया। अनेक जंगलों और गाँवों को लाँघकर वह एक तालाब पर पहुँचा। वह बहुत थक गया था। इसलिए थकावट मिटाने को वह सीधा उस तालाब में घुस गया। पद्मावती सहित तालाब में उसे घुसता देख जलदेवी ने झट से पद्मावती को हाथी पर से उतार कर तालाब के किनारे पर रख दिया। आफत की मारी बेचारी पद्मावती किनारे पर बैठी-बैठी रोने लगी। वह क्या करे, कहाँ जाए, इस विषय में उसका चित्त बिल्कुल धीर न धरता था। सिवा रोने के उसे कुछ न सूझता था। इसी समय एक माली इस ओर होकर अपने घर जा रहा था। उसने इसे रोते हुए देखा। इसके वेष-भूषा और चेहरे के रंग-ढंग से इसे किसी उच्च घराने की समझ उसे उस पर बड़ी दया आई उसने उसके पास आकर कहा-बहिन, जान पड़ता है तुम पर कोई भारी दुःख आकर पड़ा है। यदि तुम कोई हर्ज न समझो तो मेरे घर चलो। तुम्हें वहाँ कोई कष्ट न होगा। मेरा घर यहाँ से थोड़ी ही दूर पर हस्तिनापुर में है और मैं जाति का माली हूँ। पद्मावती उसे दयावान् देख उसके साथ होली। इसके सिवा उसके लिए दूसरी गति भी न थी। उस माली ने पद्मावती को अपने घर ले जाकर बड़े आदर-सत्कार के साथ रखा। वह उसे अपने बहिन के बराबर समझता था। उसका स्वभाव बहुत अच्छा था। ठीक है, कोई-कोई साधारण पुरुष भी बड़े सज्जन होते हैं। उसके सरल और सज्जन होने पर भी उसकी स्त्री बड़ी कर्कशा थी। उसे दूसरे आदमी का अपने घर रहना

तस्मिन्वापि गते तस्य भार्यया मारिदत्तया। गृहान्निर्घाटिता सा च प्राप्ता घोरं श्मशानके ॥७४॥
 प्रसूता तनुजं तत्र सती सत्पुण्यसंयुतम्। सर्वलक्षणसम्पूर्णं विचित्रं विधिचेष्टितम् ॥७५॥
 तस्मिन्नेव क्षणे तत्र तां प्रणम्य प्रभक्तितः। मातंगः संजगादेति मातस्त्वं स्वामिनी मम ॥७६॥
 कस्त्वं तयोदिते सोपि जगौ चात्र खगाचले। दक्षिणश्रेणिसंस्थेऽस्मिन्पुरे विद्युत्प्रभे शुभे ॥७७॥
 विद्युत्प्रभः खगाधीशो विद्युल्लेखास्ति कामिनी। तयोरहं समुत्पन्नो बालदेवाभिधः सुतः ॥७८॥

अच्छा ही न लगता था। कोई अपने घर में पाहुना आया कि उस पर सदा मुँह चढ़ाये रहना, उससे बोलना-चालना नहीं आदि उसके बुरे स्वभाव की खास बातें थीं। पद्मावती के साथ भी उसका यही बर्ताव रहा। एक दिन भाग्य से वह माली किसी काम के लिए दूसरे गाँव चला गया। पीछे से इसकी स्त्री की बन पड़ी। उसने पद्मावती को गाली-गलौज देकर और बुरा भला कह घर से निकाल दिया। बेचारी पद्मावती अपने कर्मों को कोसती यहाँ से चल दी। वह एक घोर श्मशान में पहुँची। प्रसूति के दिन आ लगे थे। उस पर चिन्ता और दुःख के मारे इसे चैन नहीं था। उसने यहीं पर एक पुण्यवान् पुत्र को जना। उसके हाथ, पाँव, ललाट वगैरह में ऐसे सब चिह्न थे, जो बड़े से बड़े पुरुष के होने चाहिए। जो हो, इस समय तो उसकी दशा एक भिखारी से भी बढ़कर थी। पर भाग्य कहीं छुपा नहीं रहता। पुण्यवान् महात्मा पुरुष कहीं हो, कैसी अवस्था में हो, पुण्य वहीं पहुँच कर उसकी सेवा करता है। पर होना चाहिए पास में पुण्य। पुण्य बिना संसार में जन्म निस्सार है। जिस समय पद्मावती ने पुत्र जना उसी समय पुत्र के पुण्य का भेजा हुआ एक मनुष्य चाण्डाल के वेष में श्मशान में पद्मावती के पास आया और उसे विनय से सिर झुकाकर बोला-माँ, अब चिन्ता न करो। तुम्हारे लड़के का दास आ गया है। वह इसकी सब तरह जी-जान से रक्षा करेगा। किसी तरह का कोई कष्ट इसे न होने देगा। जहाँ इस बच्चे का पसीना गिरेगा वहाँ यह अपना खून गिरावेगा। आप मेरी मालकिन हैं। सब भार मुझ पर छोड़ आप निश्चिन्त होइये। पद्मावती ने ऐसे कष्ट के समय पुत्र की रक्षा करने वाले को पाकर अपने भाग्य को सराहा, पर फिर भी अपना सब सन्देह दूर हो, इसलिए उसने कहा-भाई, तुमने ऐसे निराधार समय में आकर मेरा जो उपकार करना विचारा है, तुम्हारे इस ऋण से मैं कभी मुक्त नहीं हो सकती। मुझे तुमसे दयावानों का अत्यन्त उपकार मानना चाहिए। अस्तु, इस समय मैं और क्या अधिक कह सकती हूँ कि जैसा तुमने मेरा भला किया, वैसा भगवान् तुम्हारा भी भला करे। भाई, मेरी इच्छा तुम्हारा विशेष परिचय पाने की है। इसलिए कि तुम्हारा पहनावा और तुम्हारे चेहरे पर की तेजस्विता देखकर मुझे बड़ा ही सन्देह हो रहा है। अतएव यदि तुम मुझसे अपना परिचय देने में कोई हानि न समझो तो कृपा कर कहो। वह आगत पुरुष पद्मावती से बोला-माँ, मुझ अभागे की कथा तुम सुनोगी। अच्छा तो सुनो, मैं सुनाता हूँ। विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में विद्युत्प्रभ नाम का एक शहर है। उसके राजा का नाम भी विद्युत्प्रभ है। विद्युत्प्रभ की रानी का नाम विद्युल्लेखा है। ये दोनों राजा-रानी मुझ अभागे के माता-पिता हैं। मेरा नाम बालदेव

एकदा भार्यया सार्द्धं नाम्ना कनकमालया । दक्षिणाभिमुखं गच्छन्व्योमयानस्थितोहकम् ॥७९॥
 मार्गे रामगिरौ दृष्ट्वा विमानस्खलनेन च । वीरभट्टारकं तस्यो-पसर्गस्तु मया कृतः ॥८०॥
 तदा पद्मावती देवी निजासनसुकम्पनात् । समागत्य जिनेन्द्राणां चरणाभोजघटपदी ॥८१॥
 उपसर्गं निवार्योच्चैर्विद्याच्छेदं मम क्रुधा । चक्रे सदृष्टयो नैवं सहन्ते साधुपीडनम् ॥८२॥
 विद्याच्छेदे तदा मातर्दन्ती वा दन्तवर्जितः । निर्मदोहं तरां भूत्वा तां नत्वा प्रोक्तवानिति ॥८३॥
 मया चाज्ञानभावेन कृतः साधूपसर्गकः । भो मातस्त्वं कृपां कृत्वा विद्यां मे देहि देवते ॥८४॥
 पद्मावती महादेवी शान्ता भूत्वा तदा जगौ । हस्तिनागपुराभ्यर्णे श्मशाने भूरिभीतिदे ॥८५॥
 यो बालकः गुणोपेतः संभविष्यति रे खग । तस्य रक्षां प्रयत्नेन त्वं करिष्यसि भक्तितः ॥८६॥
 तद्राज्ये ते महाविद्याः सर्वाः सेत्स्यन्ति तच्छ्रुतेः । अहं मातंगवेषेण कुर्वन्त्यत्नं श्मशानके ॥८७॥
 तिष्ठाम्यत्र तदाकर्ण्य राज्ञी पद्मावती च सा । सन्तुष्टा मानसे गाढं वर्द्धयैनं त्वमङ्गजम् ॥८८॥

है। एक दिन मैं अपनी प्रिया कनकमाला के साथ विमान में बैठा हुआ दक्षिण की ओर जा रहा था ॥६९-७९॥

रास्ते में मुझे रामगिरी पर्वत पड़ा। उस पर मेरा विमान अटक गया। मैंने नीचे नजर डालकर देखा तो मुझे एक मुनि दीख पड़े। उन पर मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैंने तब कुछ आगा-पीछा न सोचकर उन मुनि को बहुत कष्ट दिया, उन पर घोर उपसर्ग किया। उनके तप के प्रभाव से जिनभक्त पद्मावती देवी का आसन हिला और वह उसी समय वहाँ आई उसने मुनि का उपसर्ग दूर किया। सच है, साधुओं पर किए उपद्रव को सम्यग्दृष्टि कभी नहीं सह सकते। माँ, उस समय देवी ने गुस्सा होकर मेरी सब विद्याएँ नष्ट कर दीं। मेरा सब अभिमान चूर हुआ। मैं एक मद रहित हाथी की तरह निःसत्व-तेज रहित हो गया। मैं अपनी इस दशा पर बहुत पछताया। मैं रोकर देवी से बोला-प्यारी माँ, मैं आपका अज्ञानी बालक हूँ। मैंने जो कुछ यह बुरा काम किया वह सब मूर्खता और अज्ञान से न समझ कर ही किया है। आप मुझे इसके लिए क्षमा करें और मेरी विद्याएँ मुझे लौटा दें। इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरी यह दीनता भरी पुकार व्यर्थ न गई। देवी ने शान्त होकर मुझे क्षमा किया और वह बोली-मैं तुझे तेरी विद्याएँ लौटा देती, पर मुझे तुझसे एक महान् कार्य करवाना है इसलिए मैं कहती हूँ वह कर। समय पाकर सब विद्याएँ तुझे अपने आप सिद्ध हो जायेगी। मैं हाथ जोड़े हुए उसके मुँह की ओर देखने लगा। वह बोली-“हस्तिनापुर के श्मशान में एक विपत्ति की मारी स्त्री के गर्भ से एक पुण्यवान् और तेजस्वी पुत्ररत्न जन्म लेगा। उस समय पहुँचकर तू उसकी सावधानी से रक्षा करना और अपने घर लाकर पालना-पोसना। उसके राज्य समय तुझे सब विद्याएँ सिद्ध होगी। माँ उसकी आज्ञा से मैं तभी से यहाँ इस वेष में रहता हूँ। इसलिए कि मुझे कोई पहचान न सके। माँ, यही मुझ अभागे की कथा है। आज मैं आपकी दया से कृतार्थ हुआ। पद्मावती विद्याधर का हाल सुनकर दुःखी जरूर हुई, पर उसे अपने पुत्र का रक्षक मिल गया, इससे कुछ सन्तोष भी हुआ। उसने तब अपने प्रिय बच्चे को विद्याधर के हाथ में रखकर कहा-भाई, इसकी सावधानी से रक्षा करना।

इत्युक्त्वा तदा तस्य खेचरस्य समर्पयत्। सोपि बालं समादाय निधानमिव तुष्टवान् ॥८९॥
 बालदेवखगाधीशस्तं सुलक्षणसंयुतम्। ददौ कनकमालायै स्वस्त्रियै विलसत्प्रभम् ॥९०॥
 दृष्ट्वा तत्करयोः कण्डुं करकण्डुरयं सुतः। संप्रोक्त्वेति प्रयत्नात्तं पोषयामास सा सती ॥९१॥
 अहो पूर्वप्रपुण्येन जन्तोः कष्टेपि सम्पदा। संभवत्येव तद्भव्यैः कार्यं पुण्यं जिनोदितम् ॥९२॥
 पुण्यं सुपात्रसङ्घानं पुण्यं श्रीजिनपूजनम्। पुण्यं व्रतोपवासाद्यैः संभवेच्छर्मदं सताम् ॥९३॥

अब इसके तुम ही सब प्रकार से कर्ता-धर्ता हो। मुझे विश्वास है कि तुम इसे अपना ही प्यारा बच्चा समझोगे। उसने फिर पुत्र के प्रकाशमान चेहरे पर प्रेमभरी दृष्टि डालकर पुत्र वियोग से भर आए हृदय से कहा-मेरे लाल! तुम पुण्यवान् होकर भी उस अभागिनी माँ के पुत्र हुए हो, जो जन्मते ही तुम्हें छोड़कर बिछुड़ना चाहती है। लाल! मैं तो अभागिनी थी ही, पर तुम भी ऐसे अभागे हुए जो अपनी माँ के प्रेममय हृदय का कुछ भी पता न पा सके और न पाओगे ही। मुझे इस बात का बड़ा खेद रहेगा कि जिस पुत्र ने अपनी प्रेम-प्रतिमा माँ के पवित्र हृदय द्वारा प्रेम का पाठ न सीखा वह दूसरों के साथ किस तरह प्रेम करेगा? कैसे दूसरों के साथ प्रेम का बरताव कर उनका प्रेमपात्र बनेगा? जो हो, तब भी मुझे इस बात की खुशी है कि तुम एक दूसरी माँ के पास जाते हो और वह भी आखिर है तो माँ ही। जाओ लाल जाओ, सुख से रहना, परमात्मा तुम्हारा मंगल करें। इस प्रकार प्रेममय पवित्र आशीष देकर पद्मावती कड़ा हृदय कर चल दी। बालदेव ने उस सुन्दर और तेजपुंज बच्चे को अपने घर ले आकर अपनी प्रिया कनकमाला की गोद में रख दिया और कहा-प्रिये, भाग्य से मिली इस निधि को लो। कनकमाला उस बाल-चन्द्रमा से अपनी गोद को भरी देखकर फूली न समाई। वह उसे जितना देखती उसका प्रेम क्षण-क्षण में अनंत गुणा बढ़ता ही गया। कनकमाला का जितना प्रेम होना संभव न था उतना इस नये बालक पर उसका प्रेम हो गया, सचमुच यह आश्चर्य है अथवा नई वस्तु स्वभाव से प्रिय होती है और फिर वह अपनी हो जाये तब तो उस पर होने वाले प्रेम के सम्बन्ध में कहना ही क्या? और वह प्रेम, जिसकी प्राप्ति के लिए आत्मा सदा तड़फा ही करता है और वह पुत्र जैसी परम प्रिय वस्तु तब पढ़ने वाले कनकमाला के प्रेममय हृदय का एक बार अवगाहन करके देखें कि एक नई माँ जिस बच्चे पर इतना प्रेम करती है तब जिसने उसे जन्म दिया उसके प्रेम का क्या कुछ अन्त है-सीमा है! नहीं। माँ का अपने बच्चे पर जो प्रेम होता है उसकी तुलना किसी दृष्टांत या उदाहरण द्वारा नहीं की जा सकती और जो करते हैं वे माँ के अनन्त प्रेम को कम करने का यत्न करते हैं। कनकमाला उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने उसका नाम करकण्डु रखा। इसलिए कि उस बच्चे के हाथ में उसे खुजली दीख पड़ी थी। कनकमाला ने उसका लालन-पालन करने में अपने खास बच्चे से कोई कमी न की। सच है, पुण्य के उदय से कष्ट समय में भी जीवों को सुख सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है। इसलिए भव्यजनों को जिन पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, संयम आदि पुण्य-कर्मों द्वारा सदा शुभ कर्म करते रहना चाहिए ॥८०-९३॥

ततः पद्मावती सा च गान्धारी क्षुल्लिका शुभाम्। दृष्ट्वा सुपुण्यतो भक्त्या नत्वा प्रोक्त्वा स्ववृत्तकम् ॥९४॥
 तथा सार्द्धं प्रगत्वा च यत्नाल्लब्ध्वा जगद्धितम्। समाधिगुप्तनामानं प्रणम्य मुनिसत्तमम् ॥९५॥
 जगौ स्वामिन्कृपां कृत्वा दीक्षां मे देहि शुद्धधीः। तच्छ्रुत्वा स मुनिः प्राह जैनतत्त्वविदाम्बरः ॥९६॥
 अहो पुत्रि तवेदानीं दीक्षाकालो न विद्यते। पूर्वं वारत्रयं चक्रे त्वया सद्वृत्तखण्डनम् ॥९७॥
 पश्चाद्व्रतं समाराध्य त्वं जातासि नृपात्मजा। दुःखं ते व्रतभङ्गेन जातं वारत्रयं ध्रुवम् ॥९८॥
 तत्कर्मणि प्रशान्ते च पुत्रराज्यं विलोक्य वै। तेन सार्द्धं सुपुत्रेण दीक्षा ते संभविष्यति ॥९९॥
 श्रुत्वा समाधिगुप्तस्य मुनेर्वाक्यं सुखप्रदम्। नत्वा तं क्षुल्लिकाभ्यर्णं भक्त्या सौख्येन सा स्थिता ॥१००॥
 इतोसौ बालकस्तेन बालदेवखगेशिना। सारसर्वकलासूच्यैः संचक्रे कुशलो महान् ॥१०१॥
 एकदा तौ समागत्य करकण्डुखगाधिपौ। हस्तिनागपुरस्यैव श्मशाने लीलया स्थितौ ॥१०२॥
 तदा तत्र समायातो मुनीन्द्रो जयभद्रवाक्। दिव्यज्ञानी लसद्वृत्तो मुनिवृन्दसमन्वितः ॥१०३॥
 केनचिद्यतिना तत्र दृष्ट्वा नर-कपालके। मुखे लोचनयोजातं वेणुत्रयमनुत्तरम् ॥१०४॥
 गुरोः प्रोक्तमहो स्वामिन्निदं किं कौतुकं स च। तच्छ्रुत्वा जयभद्राख्यो मुनिः प्राह तपोनिधिः ॥१०५॥

पद्मावती तब करकण्डु से जुदा होकर गान्धारी नाम की क्षुल्लिका के पास आई उसे उसने भक्ति से प्रणाम किया और आज्ञा पा उसी के पास वह बैठ गई। थोड़ी देर बार पद्मावती ने उस क्षुल्लिका से अपना सब हाल कहा और जिनदीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। क्षुल्लिका उसे तब समाधिगुप्त मुनि के पास लिवा गई पद्मावती ने मुनिराज को नमस्कार कर उनसे भी अपनी इच्छा कह सुनाई। उत्तर में मुनि ने कहा—बहिन, तू साध्वी होना चाहती है, तेरा यह विचार बहुत अच्छा है पर यह समय तेरी दीक्षा के लिए उपयुक्त नहीं हैं। कारण तूने पहले जन्म में नागदत्ता की पर्याय में जिनव्रत को तीन बार ग्रहण कर तीनों बार ही छोड़ दिया था और फिर चौथी बार ग्रहण कर तू उसके फल से राजकुमार हुई तूने तीन बार व्रत छोड़ा उससे तुझे तीनों बार ही दुःख उठाना पड़ा। तीसरी बार का कर्म कुछ और बचा है। वह जब शान्त हो जाए और इस बीच में तेरे पुत्र को भी राज्य मिल जाए तब कुछ दिनों तक राज्य सुख भोग कर फिर पुत्र के साथ-साथ ही तू भी साध्वी होना। मुनि द्वारा अपना भविष्य सुनकर पद्मावती उन्हें नमस्कार कर उस क्षुल्लिका के साथ चली गई। अब से वह पद्मावती उसी के पास रहने लगी ॥९४-१००॥

इधर करकण्डु बालदेव के यहाँ दिनों-दिन बढ़ने लगा। जब उसकी पढ़ने की उमर हुई तब बालदेव ने अच्छे-अच्छे विद्वान् अध्यापकों को रखकर उसे पढ़ाया। करकण्डु पुण्य के उदय से थोड़े ही वर्षों में पढ़-लिखकर अच्छा होशियार हो गया। कई विषय में उसकी अरोक गति हो गई एक दिन बालदेव और करकण्डु हवा-खोरी करते-करते शहर के बाहर श्मशान में आ निकले। ये दोनों एक अच्छी जगह बैठकर श्मशान भूमि की लीला देखने लगे। इतने में जयभद्र मुनिराज अपने संघ को लिए इसी श्मशान में आकर ठहरे। यहाँ एक नर-कपाल पड़ा हुआ था। उसके मुँह और आँखों के तीन छेदों में तीन बाँस उग रहे थे। उसे देखकर एक मुनि ने विनोद से अपने गुरु से पूछा-भगवान्

हस्तिनागपुरे योऽत्र महाराजा भविष्यति। अंकुशच्छत्रदण्डाः स्युस्तस्य चैतत्रयेण वै ॥१०६॥
 विप्रेण केनचित्तत्र समाकर्ण्य मुनेर्वचः। वेणुत्रयं समुन्मूल्य गृहीतं सुधनाशया ॥१०७॥
 तस्माद्विप्रात्सुधीः सोपि करकण्डुर्गृहीतवान्। यस्य यन्मुनिनोद्विष्टं तस्य तद्भवति ध्रुवम् ॥१०८॥
 कियद्विनेषु तत्रैव हस्तिनागपुरे मृतः। बलवाहनभूपस्तु विपुत्रः कर्मयोगतः ॥१०९॥
 तत्सज्जनैस्तदा हस्ती प्रेषितो विधिपूर्वकम्। स्वराजान्वेषणायोच्चैस्ततः सोपि महागजः ॥११०॥
 करकण्डुं समालोक्य सारपुण्यसमन्वितम्। अभिषिञ्च्य प्रयत्नेन धृत्वा तं निजमस्तके ॥१११॥
 राजमन्दिरमानीय स्थापयामास विष्टरे। ततस्तैः सज्जनैश्चापि प्रोल्लसज्जयघोषणैः ॥११२॥
 महोत्सवशतैः शीघ्रं करकण्डुर्गुणोज्ज्वलः। स्वप्रभुर्विहितो भक्त्या किं न स्याज्जिनपूजनात् ॥११३॥
 तत्क्षणे बालदेवस्य खेचरस्य सुपुण्यतः। विद्यासिद्धिरभूदुच्चैस्ततोसौ परया मुदा ॥११४॥
 पद्मावतीं सतीं तस्य मातरं तां समर्प्य च। सस्नेहं तं प्रणम्योच्चैः खगाद्रिं खचरोगमत् ॥११५॥
 तदासौ करकण्डुश्च हस्तिनागपुरे प्रभुः। सर्वशत्रून्समुन्मूल्य कुर्वन्नाज्यं सुखं स्थितः ॥११६॥

यह क्या कौतुक है, जो इस नर-कपाल में तीन बाँस उगे हुए हैं? तपस्वी मुनि ने उसके उत्तर में कहा— इस हस्तिनापुर का जो नया राजा होगा, इस बाँसों के उसके लिए अंकुश, छत्र, दण्ड वगैरह बनेंगे। जयभद्राचार्य द्वारा कहे गए इस भविष्य को किसी एक ब्राह्मण ने सुन लिया। अतः वह धन की आशा से इन बाँसों को उखाड़ लाया। उसके हाथ से इन्हें करकण्डु ने खरीद लिया। सच है मुनि लोग जिसके सम्बन्ध में जो बात कह देते हैं वह फिर होकर ही रहती है। उस समय हस्तिनापुर का राजा बलवाहन था। इसके कोई संतान न थी। उसकी मृत्यु हो गई अब राजा किसको बनाया जाए, इस विषय में चर्चा चली। आखिर यह निश्चय हुआ कि महाराज का खास हाथी जल भरा सुवर्ण-कलश देकर छोड़ा जाए। वह जिसका अभिषेक कर राजसिंहासन पर ला बैठा दे, वही इस राज्य का मलिक हो। ऐसा ही किया गया। हाथी राजा को ढूँढ़ने निकला। चलता-चलता वह करकण्डु के पास पहुँचा। वही इसे अधिक पुण्यवान् दीख पड़ा। उसी समय उसने करकण्डु का अभिषेक कर उसे अपने ऊपर चढ़ा लिया और राज्यसिंहासन पर ला रख दिया। सारी प्रजा ने उस तेजस्वी करकण्डु को अपना मालिक हुआ देख खूब जय-जयकार मनाया और खूब आनन्द उत्सव किया। करकण्डु के भाग्य का सितारा चमका। वह राजा हुआ। सच है, जिन भगवान् की पूजा के फल से क्या-क्या प्राप्त नहीं होता। करकण्डु के राजा होते ही बालदेव को उसकी नष्ट हुई विद्याएँ फिर सिद्ध हो गई उसे उसकी सेवा का मनचाहा फल मिल गया। इसके बाद बालदेव विद्या की सहायता से करकण्डु की खास माँ पद्मावती जहाँ थी, वहाँ गया और उसे करकण्डु के पास लाकर उसने दोनों माता-पुत्रों का मिलाप करवाया। पद्मावती आज कृतार्थ हुई उसकी वर्षों की तपस्या समाप्त हुई पश्चात् बालदेव इन दोनों को बड़ी नम्रता से प्रणाम कर अपनी राजधानी में चला गया ॥१०१-११५॥

करकण्डु के राजा होने पर कुछ राजा लोग उससे विरुद्ध होकर लड़ने को तैयार हुए। पर करकण्डु ने अपनी बुद्धिमानी और राजनीति की चतुरता से सबको अपना मित्र बनाकर देशभर में शत्रु का नाम

तत्प्रतापं समाकर्ण्य कदाचिद्वन्तिवाहनः। दूतं संप्रेषयामास तदन्ते सोपि दूतकः ॥११७॥
 समागत्य प्रभुं नत्वा करकण्डुं जगाद च। भो प्रभो मत्प्रभुर्विक्त दन्तिवाहननामभाक् ॥११८॥
 त्वया राज्यं प्रकर्तव्यं कृत्वा मे सेवनं सदा। अन्यथा ते प्रभुत्वं च वर्तते नैव भूतले ॥११९॥
 तच्छ्रुत्वासौ प्रभुः प्राह करकण्डुर्महाक्रुधा। रे रे दूत त्वकं याहि मारयामि न नीतिवित् ॥१२०॥
 रणांगणे मया कार्यं भावि यत्क्रियते हि तत्। इत्युक्त्वा वेगतो दत्वा प्रयाणं स्वबलान्वितः ॥१२१॥
 गत्वा चम्पापुरीं बाह्ये संस्थितः सुभटाग्रणीः। कार्ये समागते न स्युः सद्भटा मन्दबुद्धयः ॥१२२॥
 दन्तिवाहनराजापि स्वसैन्येन विनिर्गतः। तदा व्यूहप्रतिव्यूह क्रमेण द्वे बले स्थिते ॥१२३॥
 तस्मिन्नेव क्षणे ज्ञात्वा सर्वं पद्मावती सती। गत्वा शीघ्रं स्वभर्तुश्च संजगौ सर्ववृत्तकम् ॥१२४॥
 तदा गजात्समुत्तीर्य-समागत्य च सम्मुखम्। पिता पुत्रश्च सोप्याशु करकण्डुर्विचक्षणः ॥१२५॥
 दृष्ट्वा परस्परं तत्र पितुः पादाम्बुजद्वयम्। ननाम विनयोपेतः सुपुत्रो भक्तिनिर्भरः ॥१२६॥

भी न रहने दिया। वह फिर सुख से राज्य करने लगा। करकण्डु के दिनों-दिन बढ़ते हुए प्रताप की खबर चारों ओर फैलती-फैलती दन्तिवाहन के पास पहुँची। दन्तिवाहन करकण्डु के पिता हैं। पर न तो दन्तिवाहन को यह ज्ञात था कि करकण्डु मेरा पुत्र है और न करकण्डु को इस बात का पता था कि दन्तिवाहन मेरे पिता हैं। यही कारण था कि दन्तिवाहन को इस नये राजा का प्रताप सहन नहीं हुआ। उन्होंने अपने एक दूत को करकण्डु के पास भेजा। दूत ने आकर करकण्डु से प्रार्थना की-“राजाधिराज दन्तिवाहन मेरे द्वारा आपको आज्ञा करते हैं कि यदि राज्य आप सुख से करना चाहते हैं तो उनकी आप आधीनता स्वीकार करें। ऐसे किए बिना किसी देश के किसी हिस्से पर आपकी सत्ता नहीं रह सकती।” करकण्डु एक तेजस्वी राजा और उस पर एक दूसरे की सत्ता, सचमुच करकण्डु के लिए यह आश्चर्य की बात थी। उसे दन्तिवाहन की इस धृष्टता पर बड़ा क्रोध आया। उसने तेज आँखें कर दूत की ओर देखा और उससे कहा-यदि तुम्हें अपनी जान प्यारी है तो तुम यहाँ से जल्दी भाग जाओ। तुम दूसरे के नौकर हो, इसलिए मैं तुम पर दया करता हूँ नहीं तो तुम्हारी इस धृष्टता का फल तुम्हें मैं अभी ही बता देता। जाओ और अपने मालिक से कह दो कि वह रणभूमि में आकर तैयार रहे। मुझे जो कुछ करना होगा मैं वही करूँगा। दूत ने जैसे ही करकण्डु की आँखें चढ़ी देखीं वह उसी समय डरकर राजदरबार से रवाना हो गया ॥११६-१२१॥

इधर करकण्डु अपनी सेना में युद्धघोषणा दिलवा कर आप दन्तिवाहन पर जा चढ़ा और उनकी राजधानी को उसने सब ओर से घेर लिया। दन्तिवाहन तो इसके लिए पहले ही से तैयार थे। वे भी सेना ले युद्धभूमि में उतरे। दोनों ओर की सेना में व्यूह रचना हुई रणवाद्य बजने वाला ही था कि पद्मावती को यह ज्ञान हो कि यह युद्ध शत्रुओं का न होकर खास पिता-पुत्र का है। वह तब उसी समय अपने प्राणनाथ के पास गई और सब हाल उसने उन से कह सुनाया। दन्तिवाहन को इस समय अपनी प्रिया-पुत्र को प्राप्त कर जो आनन्द हुआ, उसका पता उन्हीं के हृदय को है। दूसरा वह कुछ थोड़ा बहुत

दन्तिवाहनभूपोपि तं समालिङ्ग्य सत्सुतम्। विभूत्या तूर्यनिर्घोषैः पुत्राद्यैः प्रविशत्पुरीम् ॥१२७॥
 भक्त्या जिनांसमभ्यर्च्य महास्नपनपूर्वकम्। तस्था गेहे सुखं धीमान्पूर्वपुण्यप्रसादतः ॥१२८॥
 अथान्यदिवसे राजा सोपि श्रीदन्तिवाहनः। विभूत्याष्टसहस्रोरुकन्याभिः परमादरात् ॥१२९॥
 विवाहं कारयित्वाशु करकण्डोर्महाधियः। राजभारं च तस्यैव समर्प्य गुणशालिनः ॥१३०॥
 स्वयं पद्मावतीदेव्या सार्द्धं पञ्चेन्द्रियोद्भवान्। भुञ्जानो विविधान्भोगान्मादिरे सुखतः स्थितः ॥१३१॥
 राज्ये स्थित्वा सुधीः सोपि करकण्डुर्महानृपः। श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां धर्मकर्मपुरस्सरम् ॥१३२॥
 स्वप्रजां पुत्रवन्नित्यं पालयन्परया मुदा। पूर्वपुण्यप्रसादेन चिरं संतिष्ठते मुदा ॥१३३॥
 तदा मंत्रिवरैः प्रोक्तं प्रणम्य परमादरात्। श्रूयतां देव यद्भवक्तैरस्माभिः संनिगद्यते ॥१३४॥
 साधनीया भवद्भिस्तु चेरमाख्यस्तथा परः। पाण्ड्यश्चोलश्च राजानो गर्वपर्वतमाश्रिताः ॥१३५॥
 तच्छ्रुत्वासौ प्रभुस्तेषां प्रेषयामास दूतकम्। तेनागतेन संज्ञात्वा तेषां गर्वं च सत्वरम् ॥१३६॥
 गत्वा स्वयं क्रुधा युद्धस्थाने यावत्स्थितस्तदा। तेऽपि सम्मुखमागत्य चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥१३७॥

पा सकता है जिस पर ऐसा ही भयानक प्रसंग आकर कभी पड़ा हो। सर्वसाधारण उनके उस आनन्द का, उस सुख का थाह नहीं ले सकते। दन्तिवाहन तब उसी समय हाथी से उतर कर अपने प्रिय-पुत्र के पास आए। करकण्डु को ज्ञात होते ही वह उनके सामने दौड़ा गया और जाकर उनके पाँवों में गिर पड़ा। दन्तिवाहन ने झट से उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया। पिता-पुत्र का पुण्य मिलाप हुआ। इसके बाद दन्तिवाहन ने बड़े आनन्द और ठाठबाट से पुत्र का शहर में प्रवेश कराया। प्रजा ने अपने युवराज का अपार आनन्द के साथ स्वागत किया। घर-घर आनन्द उत्सव मनाया गया। दान दिया गया। पूजा-प्रभावना की गई महा अभिषेक किया गया। गरीब लोग मनचाही सहायता से खुश किए गए। इस प्रकार पुण्य-प्रसाद से करकण्डु ने राज्यसम्पत्ति के सिवा कुटुम्ब-सुख भी प्राप्त किया। वह अब स्वर्ग के देवों की तरह सुख से रहने लगा ॥१२२-१२८॥

कुछ दिनों बाद दन्तिवाहन ने अपने पुत्र का विवाह समारंभ किया। उसमें उन्होंने खूब खर्च कर बड़े वैभव के साथ करकण्डु का कोई आठ हजार राजकुमारियों के साथ ब्याह किया। ब्याह के बाद ही दन्तिवाहन राज्य का भार सब करकण्डु के जिम्मे कर आप अपनी प्रिया पद्मावती के साथ सुख से रहने लगे। सुख-चैन से समय बिताना उन्होंने अब अपना प्रधान कार्य रखा ॥१२९-१३१॥

इधर करकण्डु राज्यशासन करने लगा। प्रजा को उसके शासन की जैसी आशा थी, करकण्डु ने उससे कहीं बढ़कर धर्मज्ञता, नीति और प्रजा प्रेम बतलाया। प्रजा को सुखी बनाने में उसने कोई बात की कमी न रखी। इस प्रकार वह अपने पुण्य का फल भोगने लगा। एक दिन समय देख मंत्रियों ने करकण्डु से निवेदन किया-महाराज, चेरम, पाण्ड्य और चोल आदि राजा चिर समय से अपने आधीन हैं। पर जान पड़ता है उन्हें इस समय कुछ अभिमान ने आ घेरा है। वे मानपर्वत का आश्रय पा अब स्वतंत्र से हो रहे हैं। राज-कर वगैरह भी अब वे नहीं देते। इसलिए उन पर चढ़ाई करना बहुत आवश्यक

करकण्डुस्ततो दृष्ट्वा भूपः स्वबलभङ्गकम्। महायुद्धं विधायोच्चैर्धृत्वा शत्रुभूपतीन् ॥१३८॥
कोपात्तन्मुकुटे पादं न्यसंस्तत्र विलोक्य च। जिनबिम्बानि हा कष्टं मया किं पापिना कृतम् ॥१३९॥
इत्युक्त्वा तान्प्रति प्राह यूयं जैनाः किमत्र भो। तदातैरोमिति प्रोक्ते करकण्डुश्च भूपतिः ॥१४०॥
हा हा मया निकृष्टेन क्रोधान्धेन विनिर्मितः। उपसर्गो हि जैनानां महापापविधायकः ॥१४१॥
इत्यात्मनिन्दनं कृत्वा कारयित्वा च तान्क्षमाम्। तैः सार्द्धं च समागच्छन्स्वदेशं प्रति संमुदा ॥१४२॥
मार्गे तेरपुराभ्यर्णे संस्थितः सैन्यसंयुतः। तदागत्य च भिल्लाभ्यां तं प्रणम्य प्रजल्पितम् ॥१४३॥
अस्मात्तेरपुरादस्ति दक्षिणस्यां दिशि प्रभो। गव्यूतिकान्तरे चारु पर्वतस्योपरिस्थितम् ॥१४४॥

है। इस समय ढील कर देने से सम्भव है थोड़े ही दिनों में शत्रुओं का जोर अधिक बढ़ जायें इसलिए इसके लिए प्रयत्न कीजिए कि वे ज्यादा सिर पर न चढ़ें, उसके पहले ही ठीक ठिकाने लगाया जाये। मंत्रियों की सलाह सुन और उस पर विचार कर पहले करकण्डु ने उन लोगों के पास अपना दूत भेजा। दूत अपमान के साथ लौट आया। करकण्डु ने सब सीधी तरह सफलता प्राप्त न होती देखी तब उसे युद्ध के लिए तैयार होना पड़ा। वह सेना लिए युद्धभूमि में जा डटा। शत्रु लोग भी चुपचाप न बैठकर उसके सामने हुए। दोनों ओर की सेना की मुठभेड़ हो गई घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर के हजारों वीर काम आए। अन्त में करकण्डु की सेना के युद्धभूमि से पाँव उखड़े। यह देख करकण्डु स्वयं युद्धभूमि में उतरा। बड़ी वीरता से वह शत्रुओं के साथ लड़ा। इस नई उम्र में उसकी इस प्रकार वीरता देखकर शत्रुओं को दाँतों तले उँगली दबाना पड़ी। विजयश्री ने करकण्डु को ही वरा। जब शत्रु राजा आ-आकर इसके पाँव पड़ने लगे और इसकी नजर उनके मुकुटों पर पड़ी तो देखकर यह एक साथ हतप्रभ हो गया और बहुत-बहुत पश्चाताप करने लगा कि-हाय! मुझ पापी ने यह अनर्थ क्यों किया? न जाने इस पाप से मेरी क्या गति होगी? बात यह थी कि उन राजाओं के मुकुटों में जिन भगवान् की प्रतिमाएँ खुदी हुई थी और वे राजा जैनी थे। अपने धर्मबन्धुओं को जो उसने कष्ट दिया और भगवान् का अविनय किया उसका उसे बेहद दुःख हुआ। उसने उन लोगों को बड़े आदरभाव से उठाकर पूछा-क्या सचमुच आप जैनधर्मी हैं? उनकी ओर से सन्तोषजनक उत्तर पाकर उसने बड़े कोमल शब्दों में उनसे कहा-महानुभावो, मैंने क्रोध से अन्धे होकर जो आपको यह व्यर्थ कष्ट दिया, आप पर उपद्रव किया, इसका मुझे अत्यन्त दुःख है। मुझे इस अपराध के लिए आप लोग क्षमा करें। इस प्रकार उनसे क्षमा कराकर उनको साथ लिए वह अपने देश को रवाना हुआ ॥१३२-१४२॥

रास्ते में तेरपुर के पास इनका पड़ाव पड़ा। इसी समय कुछ भीलों ने आकर नम्र मस्तक से इनसे प्रार्थना की-राजाधिराज, हमारे तेरपुर से दो-कोस दूरी पर एक पर्वत है। उस पर एक छोटा-सा धाराशिव नाम का गाँव बसा हुआ है। इस गाँव में एक बहुत बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है। उसमें विशेषता यह है कि उसमें कोई एक हजार खम्भे हैं। वह बड़ा सुन्दर है। उसे आप देखने को चलें। इसके सिवा पर्वत पर एक यह आश्चर्य की बात है कि वहाँ एक बाँवी है। एक हाथी रोज

धाराशिवपुरं चास्ति सहस्रस्तंभसंभवम्। श्रीमज्जिनेन्द्रदेवस्य भवनं सुमनोहरम् ॥१४५॥
 तस्योपरि तथा शैलमस्तके संप्रवर्तते। वल्मीकं तच्च सद्भस्ती शुभो भक्त्या दिनं प्रति ॥१४६॥
 शुण्डादण्डेन सत्तोयं गृहीत्वा कमलं सुधीः। समागत्य परीत्योच्चैः समभ्यर्च्य नमत्यलम् ॥१४७॥
 इत्याकर्ण्य प्रहर्षेण ताभ्यां दत्त्वोचितं द्रुतम्। करकण्डुर्महाराजो जिनभक्तिपरायणः ॥१४८॥
 गत्वा तत्र समालोक्य जिनेन्द्रभवनं शुभम्। समभ्यर्च्य जिनाधीशान्स्वर्गमोक्षसुखप्रदान् ॥१४९॥
 स्तुतिं चक्रे च सद्भक्त्या शर्मकोटिविधायिनीम्। प्रमादो नैव सद्दृष्टेर्धर्मकर्मणि सर्वदा ॥१५०॥
 ततो दृष्ट्वा च वल्मीकं पूजयन्तं महाद्विपम्। अत्रास्ति कारणं किञ्चिच्चेतसि संविचार्य च ॥१५१॥
 तद्वल्मीकं समुन्मूल्य मञ्जूषां तत्र संस्थिताम्। दृष्ट्वोद्घाट्य प्रयत्नेन वीक्ष्य रत्नमयीं च सः ॥१५२॥
 श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्रस्य प्रतिमां पापनाशिनीम्। सन्तुष्टो मानसे चारुसद्दृष्टिर्धर्मवत्सलः ॥१५३॥
 तस्याश्च भवनं चारु कारयित्वा सुभक्तितः। सुधीरगलदेवाख्यं स्थापयामास तत्र ताम् ॥१५४॥
 स मूलप्रतिमाङ्गे च ग्रन्थिं दृष्ट्वा महीपतिः। शिल्पकर्मिणं सोपि प्राह विरूपं दृश्यते तराम् ॥१५५॥
 इमां स्फोटय तच्छ्रुत्वा शिलाकर्मी जगाद च। अत्र तोयसिरा देव विद्यते तत्र भिद्यते ॥१५६॥

अपनी सूँड में थोड़ा-सा पानी और एक कमल का फूल लिए वहाँ आता है और उस बाँवी की परिक्रमा देकर वह पानी और फूल उस पर चढ़ा देता है। इसके बाद वह उसे अपना मस्तक नवाकर चला जाता है। उसका यह प्रतिदिन का नियम है। महाराज! नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है? करकण्डु भीलों द्वारा यह शुभ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। इस समाचार को लाने वाले भीलों को उचित इनाम देकर वह स्वयं सबको साथ लिए, उस कौतुकमय स्थान को देखने गया। पहले उसने जिनमन्दिर जाकर भक्ति पूर्वक भगवान् की पूजा की, स्तुति की। सच है—धर्मात्मा पुरुष धर्म के कामों में कभी प्रमाद-आलस नहीं करते। बाद में वह उस बाँवी की जगह गया। उसने वहाँ भीलों के कहे माफिक हाथी को उस बाँवी की पूजा करते पाया। देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ उसने सोचा कि इसका कुछ न कुछ कारण होना चाहिए। नहीं तो इस पशु में ऐसा भक्तिभाव नहीं देखा जाता। यह विचार कर उसने उस बाँवी को खुदवाया। उसमें से एक सन्दूक निकली। उसने उसे खोलकर देखा। सन्दूक में एक रत्नमयी पार्श्वनाथ भगवान् की पवित्र प्रतिमा थी। उसे देखकर धर्मप्रेमी करकण्डु को अतिशय प्रसन्नता हुई उसने तब वहाँ 'अगलदेव' नाम का एक विशाल जिन मन्दिर बनवाकर उसमें बड़े उत्सव के साथ उस प्रतिमा को विराजमान किया। प्रतिमा पर एक गाँठ देखकर करकण्डु ने शिल्पकार से कहा—देखो, तो प्रतिमा पर यह गाँठ कैसी है? प्रतिमा की सब सुन्दरता इससे मारी गई इसे सावधानी के साथ तोड़ दो। यह अच्छी नहीं दीख पड़ती ॥१४३-१५५॥

शिल्पकार ने कहा—महाराज, यह गाँठ ऐसी वैसी नहीं है जो तोड़ दी जाये। ऐसी रत्नमयी दिव्य प्रतिमा पर गाँठ होने का कुछ न कुछ कारण जान पड़ता है। इसका बनाने वाला इतना कम बुद्धि न होगा कि प्रतिमा की सुन्दरता नष्ट होने का ख्याल न कर इस गाँठ को रहने देता। मुझे जहाँ तक जान

भिद्यते चेदयं ग्रन्थिस्तोयपूरो महानहो। निर्गच्छति ततस्तस्य महाग्रहवशेन च ॥१५७॥
 स्फोटितः शिल्पिनासौ च निर्गतो जलपूरकः। तस्मान्निर्गमने जातो राजादीनां च संशयः ॥१५८॥
 तदासौ करकण्डुश्च राजा श्रीजिनभक्तिभाक्। जलापनयनाग्राहं कृत्वा धर्मानुरागतः ॥१५९॥
 दर्भशय्यां समासीनो द्विधा संन्यासपूर्वकम्। तत्पुण्यतस्तदा शीघ्रं देवो नागकुमारकः ॥१६०॥
 प्रत्यक्षीभूय तं प्राह नत्वा सद्गिनयान्वितः। कालमाहात्म्यतो देव प्रतिमा रत्ननिर्मिता ॥१६१॥
 रक्षितुं शक्यते नैव तस्माच्च लयणं मया। तोयपूर्णं कृतं सर्वं भवद्भिस्तु ततः प्रभो ॥१६२॥
 जलापनयने चात्र कर्तव्यो नाग्रहः सुधीः। इत्याक्षेपेण देवेन स राजा धार्मिको महान् ॥१६३॥
 भक्त्या सद्दर्भशय्यायाः शीघ्रमुत्थापितो वदत्। केनेदं लयणं ब्रूहि कारितं सुमनोहरम् ॥१६४॥
 तथा वल्मीकमध्ये च प्रतिमा पापनाशिनी। स्थापिता केन तच्छ्रुत्वा जगौ नागकुमारकः ॥१६५॥
 अत्रैव विजयाद्ध्वंस्ति चोत्तरश्रेणिसंस्थितम्। नभस्तिलकमत्युच्चैः संपदाभिर्भूतं पुरम् ॥१६६॥
 तत्र चामितवेगाख्यसुवेगौ खचराधिपौ। संजातौ श्रीजिनेन्द्राणां पादपद्मद्वये रतौ ॥१६७॥
 ज्येष्ठः परश्च भद्रात्मा तौ द्वौ चैकदिने मुदा। आर्यखण्डेऽत्र सद्भक्त्या समायातौ जिनालयान् ॥१६८॥
 वन्दितुं च समभ्यर्च्य मलयाख्यगिरौ जिनान्। भ्रमन्तौ पर्वते तत्र श्रीमत्पाशर्वजिनाकृतिम् ॥१६९॥

पड़ता है, इस गाँठ का सम्बन्ध किसी भारी जल-प्रवाह से होना चाहिए और यह असंभव भी नहीं। संभवतः इसकी रक्षा के लिए यह प्रयत्न किया गया हो। इसलिए मेरी समझ में इसका तुड़वाना उचित नहीं। करकण्डु ने उसका कहा न माना। उसे उसकी बात पर विश्वास न हुआ। उसने तब शिल्पकार से बहुत आग्रह कर आखिर उसे तुड़वाया ही। जैसे ही वहाँ गाँठ टूटी उसमें से एक बड़ा भारी जल-प्रवाह वह निकला। मन्दिर में पानी इतना भर गया कि करकण्डु वगैरह को अपने जीवन के बचने का भी सन्देह हो गया। तब वह जिनभक्त उस प्रवाह के रोकने के लिए संन्यास ले कुशासन पर बैठ कर परमात्मा का स्मरण चिंतन करने लगा। उसके पुण्य-प्रभाव से नागकुमार ने प्रत्यक्ष आकर उससे कहा- राजन् काल अच्छा नहीं इसलिए प्रतिमा की सुरक्षा के लिए मुझे यह जल पूर्ण लवण बनाना पड़ा इसलिए आप इस जलप्रवाह के रोकने का आग्रह न करें इस प्रकार करकण्डु को नागकुमार ने समझा कर आसन पर से उठ जाने को कहा। करकण्डु नागकुमार के कहने से संन्यास छोड़ उठ गया। उठकर उसने नागकुमार से पूछा-क्यों जी, ऐसा सुन्दर यह लवण यहाँ किसने बनाया और किसने इस बाँवी में इस प्रतिमा को विराजमान किया? नागकुमार ने कहा-सुनिए, विजयाद्ध्व पर्वत की उत्तर श्रेणी में खूब सम्पत्तिशाली नभस्तिलक नाम का एक नगर था। उसमें अमितवेग और सुवेग नाम के दो विद्याधर राजा हो चुके हैं। दोनों धर्मज्ञ और सच्चे जिनभक्त थे। एक दिन वे दोनों भाई आर्यखण्ड के जिनमन्दिरों के दर्शन करने के लिए आये। कई मंदिरों में दर्शन-पूजन कर वे मलयाचल पर्वत पर आये यहाँ घूमते हुए उन्होंने पार्श्वनाथ भगवान् की इस रत्नमयी प्रतिमा को देखा। इसके दर्शन कर उन्होंने इसे एक सन्दूक में बन्द कर दिया और सन्दूक को एक गुप्त स्थान पर रखकर वे उस समय चले गए। कुछ समय बाद वे आकर उस सन्दूक को कहीं अन्यत्र ले जाने के लिए उठाने लगे पर सन्दूक अब

दृष्ट्वा नत्वा समादाय मञ्जूषायां निधाय च। अत्रैव सद्गिरौ चेमां मञ्जूषां सारयन्नतः ॥१७०॥
 संस्थाप्य क्वापि गत्वा च पुनश्चागत्य भक्तितः। समुत्थापयतो यावत्तावन्नोत्तिष्ठति त्वसौ ॥१७१॥
 ततस्तेरपुरं गत्वा प्रणम्यावधिलोचनम्। मुनीन्द्रं प्राहतुः स्वामिन्कथं नोत्तिष्ठति प्रभो ॥१७२॥
 मञ्जूषिकेति संश्रुत्वा ज्ञानी प्राह मुनीश्वरः। अहो खगाधिपौ चेषा मञ्जूषा शर्मकारिणी ॥१७३॥
 लयणस्योपरि व्यक्तं लयणं संभविष्यति। वक्त्येवं च पुनर्वक्ति भावि यच्छृणुतादरत् ॥१७४॥
 अयं सुवेगनामा च मृत्वार्तध्यानतो ध्रुवम्। गजो भूत्वा स्वमंजूषामिमां संपूजयिष्यति ॥१७५॥
 करकण्डुर्यदा राजा तां समुत्पाटयिष्यति। तदा द्विपस्तु संन्यासं कृत्वा स्वर्गं प्रयास्यति ॥१७६॥
 इत्याकर्ण्य मुनेर्वाक्यं मानसे तौ खगाधिपौ। प्रतिमायाः स्थिरत्वस्य संज्ञात्वा कारणं महत् ॥१७७॥
 पुनस्तं मुनिमानम्य पृष्टवन्तौ महामुने। कारितं लयणं केन शर्मदं भव्यदेहिनाम् ॥१७८॥
 तन्निशम्य मुनिः सोपि जगौ संज्ञानविग्रहः। इहैव विजयाद्धं च दक्षिणश्रेणिसंस्थिते ॥१७९॥
 रथनूपुरसन्नाम्नि पुरे ख्यातौ खगाधिपौ। जातौ नीलमहानीलौ संग्रामे शत्रुभिः क्रुधा ॥१८०॥
 प्राप्तविद्याधनच्छेदौ ताविहागत्य पर्वते। कृत्वा वासं सुखं स्थित्वा कियत्कालं सुधार्मिकौ ॥१८१॥
 कारयित्वा जिनेन्द्राणां लयणं सौख्यकारणम्। पुण्याद्विद्याः समाप्योच्चैर्विजयाद्धं गतौ सुखम् ॥१८२॥
 ततस्तौ खेचरेन्द्रौ च तपः श्रीमज्जिनोदितम्। कृत्वा नीलमहानीलौ प्राप्तौ स्वर्गं गुणोज्ज्वलौ ॥१८३॥
 इत्यादिसर्वसम्बन्धं संश्रुत्वामितवेगवाक्। ज्येष्ठो दीक्षां समादाय खगेशो सुतपोनिधिः ॥१८४॥
 कालं समाधिना कृत्वा स्वर्गं ब्रह्मोत्तराभिधम्। गत्वा महर्द्धिको देवः संजातो जिनभक्तिभाक् ॥१८५॥

की बार उनसे न उठी। तब तेरपुर जाकर उन्होंने अवधिज्ञानी मुनिराज से अब हाल कहकर सन्दूक के न उठने का कारण पूछा। मुनि ने कहा—“सुनिए, यह सुखकारिणी सन्दूक तो पहले लयण ऊपर दूसरा लयण होगी। मतलब यह कि यह सुवेग आर्तध्यान से मरकर हाथी होगा। वह इस सन्दूक की पूजा किया करेगा। कुछ समय बाद करकण्डु राजा यहाँ आकर इस सन्दूक को निकालेगा और सुवेग का जीव हाथी तब संन्यास ग्रहण कर स्वर्ग गमन करेगा। इस प्रकार मुनि द्वारा इस प्रतिमा की चिरकाल तक अवस्थिति जानकर उन्होंने मुनि से फिर पूछा—तो प्रभो! इस लयण को किसने बनाया? मुनिराज बोले—इसी विजयाद्ध की दक्षिण श्रेणी में बसे हुए रथनूपुर में नील और महानील नाम के दो राजा हो गए हैं। शत्रुओं के साथ युद्ध में उनकी विद्या, धन, राज्य वगैरह सब कुछ नष्ट हो गया। तब वे इस मलय पर्वत पर आकर बसे। यहाँ वे कई वर्षों तक आराम से रहे। दोनों भाई बड़े धर्मात्मा थे। उन्होंने यह लयण बनवाया। पुण्य से उन्हें उनकी विद्याएँ फिर प्राप्त हो गई तब वे पीछे अपनी जन्मभूमि रथनूपुर चले गए। इसके बाद कुछ दिनों तक वे दोनों गृह-संसार में रहे। फिर जिनदीक्षा लेकर दोनों भाई साधु हो गए। अन्त में तपस्या के प्रभाव से वे स्वर्ग गए।” इस प्रकार सब हाल सुनकर बड़ा भाई अमितवेग तो उसी समय दीक्षा लेकर मुनि हो गया और अन्त में समाधि से मरकर ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुआ और सुवेग-अमितवेग का छोटा भाई आर्तध्यान से मरकर वह हाथी हुआ। सो ब्रह्मोत्तर स्वर्ग से पूर्व जन्म के भातृप्रेम के वश देखने आकर उसे धर्मोपदेश किया, समझाया। उससे

आर्त्तध्यानेन मृत्वा स सुवेगस्तु खगाधिपः। हस्ती जातोयमत्युच्चैस्तेन देवेन बोधितः ॥१८६॥
 भूत्वा जातिस्मरः पुण्यात्सम्यक्त्वाणुव्रतानि च। समादाय च वल्मीकं भक्त्या संपूजयन्स्थितः ॥१८७॥
 करकण्डो महीनाथ भो त्वयोत्पाटिते सति। वल्मीके सोपि हस्ती च संन्यासेनात्र तिष्ठति ॥१८८॥
 त्वं च तेरपुरेऽत्रैव पुरा गोपोसि भो प्रभो। पूजया जिननाथस्य राजा जातोसि साम्प्रतम् ॥१८९॥
 तस्मादिदं जगत्सारं सुधीः श्रीमज्जिनार्चनम्। येन प्राणी भवत्येवं क्षणात्सत्सौख्यभाजनम् ॥१९०॥
 इत्युच्चैस्तं सुराजानं करकण्डुं गुणोज्ज्वलम्। सुधीर्नागकुमारोसौ संबोध्यैवं सुरोत्तमः ॥१९१॥
 नत्वा धर्मानुरागेण संप्राप्तः स्वालयं मुदा। अहो पुण्येन जन्तूनां मित्रत्वं तादृशं भवेत् ॥१९२॥
 ततस्तेन नरेन्द्रेण तृतीयदिवसे द्रुतम्। कारितं जैनसद्धर्मश्रवणं तस्य दन्तिनः ॥१९३॥
 सोपि दन्ती तदा मृत्वा सम्यक्त्वपरिणामभाक्। सहस्रारं दिवं प्राप्य देवो जातो महर्द्धिकः ॥१९४॥
 पशुश्चापि सुरो भूत्वा बभूव सुखभाजनम्। भवेच्छ्रीमज्जिनेन्द्रोक्तधर्मात्किं प्राणिनां धनम् ॥१९५॥
 करकण्डुश्च भूपालो जैनधर्मधुरंधरः। स्वस्य मातुस्तथा बालदेवस्योच्चैः सुनामतः ॥१९६॥
 कारयित्वा सुधीस्तत्र लयणत्रयमुत्तमम्। तत्प्रतिष्ठां महाभूत्या शीघ्रं निर्माप्य सादरात् ॥१९७॥
 स्वपुत्रवसुपालाय राज्यं दत्वा विरक्तधीः। संसारदेहभोगांश्च ज्ञात्वासौ बृहद् दोषमान् ॥१९८॥

इस हाथी को जातिस्मरण हो गया। तब उसने अणुव्रत ग्रहण किए। तब से यह इस प्रकार शान्त रहता है और सदा इस बाँवी की पूजन किया करता है तुमने बाँवी तुड़ाकर उसमें से प्रतिमा निकाल ली तब से हाथी संन्यास लिए यहीं रहता है और राजन्, आप पूर्वजन्म में इसी तेरपुर में ग्वाले थे। आपने तब एक कमल के फल द्वारा जिनभगवान् की पूजा की थी। उसी के फल से समय आप राजा हुए हैं। राजन्, यह जिनपूजा सब पुण्यकर्मों में उत्तम पुण्यकर्म है यही तो कारण है कि क्षणमात्र में इसके द्वारा उत्तम से उत्तम सुख प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार करकण्डु को आदि से इति पर्यन्त सब हाल कहकर और धर्म प्रेम से उसे नमस्कार कर नागकुमार अपने स्थान चला गया। सच है यह पुण्य ही का प्रभाव है जो देव भी मित्र हो जाते हैं ॥१५६-१९२॥

हाथी को संन्यास लिए आज तीसरा दिन था। करकण्डु ने उसके पास जाकर उसे धर्म का पवित्र उपदेश किया हाथी अन्त में सम्यक्त्व सहित मरकर सहस्रार स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुआ। एक पशु धर्म का उपदेश सुनकर स्वर्ग में अनन्त सुखों का भोगने वाला देव हुआ, तब जो मनुष्य जन्म पाकर पवित्र भावों से धर्म पालन करें तो उन्हें क्या प्राप्त न हो? बात यह है कि धर्म से बढ़कर सुख देने वाली संसार में कोई वस्तु है ही नहीं। इसलिए धर्म प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए। करकण्डु ने इसके बाद इसी पर्वत पर अपने, अपनी माँ के तथा बालदेव के नाम से विशाल और सुन्दर तीन जिनमन्दिर बनवाएँ, बड़े वैभव के साथ उनकी प्रतिष्ठा करवाई जब करकण्डु ने देखा कि मेरा सांसारिक कर्तव्य सब पूरा हो चुका, तब राज्य का सब भार अपने पुत्र वसुपाल को सौंप कर और संसार, शरीर, भोगों को महादोष वाला जानकर करके भोगादि से विरक्त होकर आप अपने माता-पिता तथा और भी कई

पित्रा क्षत्रियभूपाद्यैश्चेरमाद्यैः विचक्षणः। पद्मावत्या समं मात्रा दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितः ॥१९९॥
कृत्वा तपो जगत्सारं संसारम्भोधिपारदम्। निर्मलं निर्मलः सोपि संन्यासेन समं स्थिरः ॥२००॥
ध्यायन्पादाम्बुजद्वन्द्वं जिनेन्द्राणां सुखप्रदम्। सहस्रारं दिवं प्राप्तः करकण्डमुनीश्वरः ॥२०१॥
दन्तिवाहनभूपाद्याः कालान्ते तेऽपि सद्भिद्यः। स्वस्वपुण्यानुसारेण स्वर्गलोकं ययुः सुखम् ॥२०२॥
पुरा पद्मेन संपूज्य श्रीजिनं कोटिशर्मदम्। करकण्डुः सुखं प्राप्तः किं पुनश्चाष्टधार्चनैः ॥२०३॥
ये भव्याः श्रीजिनेन्द्राणां भक्त्या पादद्वयार्चनम्। नित्यमेव प्रकुर्वन्ति ते लभन्ते परं सुखम् ॥२०४॥

गोपालो धनदत्तवागपि पुरा मुग्धोऽपि पद्मेन च
श्रीमज्जैनपदाम्बुजं शुभतरं संपूज्य पूज्योभवत्।
देवाद्वैः करकण्डुनामनृपतिः श्रीमत्प्रभाचन्द्रव-
त्तस्माद्भव्यजनैर्जिनेन्द्रचरणाम्भोजं सदाभ्यर्च्यते ॥२०५॥

इति कथाकोशे करकण्डुनृपतेराख्यानं समाप्तम्।

११४. जिनपूजाफलप्राप्तभेकाख्यानम्

श्रीमज्जिनं जगत्पूज्यं भारतीं भुवनोत्तमाम्। वक्ष्येहं सद्गुरुं नत्वा जिनपूजाफलोदयम् ॥१॥

राजाओं के साथ जिनदीक्षा ले योगी हो गया। योगी होकर करकण्डु मुनि ने खूब तप किया, जो कि निर्दोष और संसार-समुद्र से पार करने वाला है। अन्त में परमात्म-स्मरण में लीन हो उसने भौतिक शरीर छोड़ा। तप के प्रभाव से उसे सहस्रार स्वर्ग में दिव्य देह मिली। पद्मावती, दन्तिवाहन तथा अन्य राजा तो अपने पुण्य के अनुसार स्वर्गलोक गए ॥१९३-२०२॥

करकण्डु ने ग्वाले के जन्म में केवल एक कमल के फूल द्वारा भगवान् की पूजा की थी। उसे उसका जो फल मिला उसे आप सुन चुके हैं। तब जो पवित्र भावपूर्वक आठ द्रव्यों से भगवान् की पूजा करेंगे उनके सुख का तो फिर पूछना ही क्या? थोड़े में यों समझिए कि जो भव्यजन भक्ति से भगवान् की प्रतिदिन पूजा किया करते हैं वे सर्वोत्तम-सुख मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं, तब और सांसारिक सुखों की तो उनके सामने गिनती ही क्या हैं? ॥२०३-२०४॥

एक बे-समझ ग्वाले ने जिन भगवान् के पवित्र चरणों की एक कमल के फूल से पूजा की थी, उसके फल से वह करकण्डु राजा होकर देवों द्वारा पूज्य हुआ। इसलिए सुख की चाह करने वाले भव्यजनों को भी उचित है कि वे जिन-पूजा की ओर अपने ध्यान को आकर्षित करें। उससे उन्हें मनचाहा सुख मिलेगा, क्योंकि भावों का पवित्र होना पुण्य का कारण है और भावों के पवित्र करने को जिन-पूजा भी एक प्रधान कारण है ॥२०५॥

११४. जिनपूजन-प्रभाव-कथा

संसार द्वारा पूजे जाने वाले जिनभगवान् को, सर्वश्रेष्ठ गिनी जाने वाली जिनवाणी को और राग, द्वेष, मोह, माया आदि दोषों से रहित परम वीतरागी साधुओं को नमस्कार कर जिनपूजा द्वारा फल प्राप्त